दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

वर्ष सातवाँ
अंक आठवाँ

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी
वकील

मगसिर
2478

कृषक की जिज्ञासा

जीव अज्ञान के कारण अनादिकाल से अवतार में बैल की भाँति दुःखी हो रहा है; तथापि मूढ़ जीव को उससे छूटने की जिज्ञासा भी नहीं होती। एक गाँव में एक किसान पूछता था कि—'महाराज! आत्मा अवतार में भटकता है, उस भटकने का अंत आये और मुक्ति हो–ऐसा कुछ बतलाइये!' ऐसा जिज्ञासा का प्रश्न भी बिरलों को ही उठता है। ऐसा अमूल्य अवसर बारंबार नहीं मिलता, इसलिये जिज्ञासु होकर, अंतर में मिलान करके सच्चा आत्मस्वरूप क्या है, उसे समझना चाहिये; क्योंकि जो शुद्ध आत्मा को पहिचान ले, वही शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है।

[प्रवचन से]

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

80

एक अंक
चार आना

जैन स्वाध्याय मन्दिर : सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

इस अंक के लेख

1- 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'

2- पदार्थ के स्वरूप का विज्ञान

3- जिनवाणी माता जागृत करती हैं

4- श्रुतदेवता जयवंत हो!

5- जीव को संसारपरिभ्रमण और दु:ख किस कारण होता है?

थके हुए का विश्राम स्थल

''हे भाई ! अब तुझे जन्म-मरण से थकान मालूम हुई है ? यदि थकान लगी हो तो उस जन्म-मरण से छूटने के लिए चैतन्यशरण को पहिचानकर उसके आश्रय से विश्राम कर!''

''जीव ने अनंतकाल में दया, दान, पूजा, व्रत, तप, त्याग आदि सबकुछ किया है, किन्तु अपना स्वरूप रागादि से पृथक् है, उसे कभी नहीं जाना।....हे भाई ! अब तू अपनी दया कर, दया कर ! सत्समागम से आत्मा को पहिचानकर अपने आत्मा को चौरासी के अवतारों के परिभ्रमण से अब बचा ले।''

''इन चौरासी के अवतारों में से जो भयभीत हुआ हो, वह आत्मा की शरण को ढूँढता है। वह अंतर में विचार करता है कि अरे रे ! क्या भव करने का ही मेरा स्वभाव होगा ? या भवरहित शांति कहीं होगी ? अज्ञानरूप से पुण्य-पाप करके भवभ्रमण के दु:ख भोगना मेरा स्वरूप नहीं हो सकता। इसप्रकार जिसे अंतर में भवभ्रमण का डर लगता हो, वह जीव चैतन्य की शरण ढूंढता है।''

– बींछिया : पंचकल्याणक प्रवचन से

आत्मधर्म

मगसिर 2478 ★ वर्ष सातवाँ ★ अंक आठवाँ

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

मगसिर कृष्ण 14 शुक्रवार : प्रवचनसार गाथा 100 पर
परम पूज्य स्वामीजी का प्रवचन

वस्तु में उत्पाद-व्यय और ध्रुव - यह तीनों एक साथ ही होते हैं, यदि ऐसा न माना जाये और उत्पाद-व्यय-ध्रुव इन तीनों को एक-दूसरे के बिना भिन्न-भिन्न ही माना जाये तो उसमें दोष आते हैं, वे दोष यहाँ बतलाते हैं -

1. मात्र उत्पाद मानने में आने वाले दोष

यदि व्यय और ध्रुव के बिना मात्र उत्पाद ही माना जाये तो, एक तो उत्पादनकारण के बिना वह उत्पाद ही सिद्ध नहीं होगा अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा। मिथ्यात्व का व्यय, सम्यक्त्व के उत्पाद का कारण है और आत्मा की ध्रुवता के आधर से सम्यक्त्व का उत्पाद होता है। आत्मा की ध्रुवता के आधार बिना और मिथ्यात्व के व्यय बिना मात्र सम्यक्त्व के उत्पाद को ही ढूँढें तो वह नहीं मिलेगा। ध्रुव के आधार के बिना उत्पाद काहे में होगा ? और मिथ्यात्व पर्याय का अभाव हुए बिना सम्यक्त्व पर्याय का उत्पाद कहाँ से होगा ? नवीन पर्याय उत्पन्न होने का कारण पुरानी पर्याय का व्यय है और नवीन पर्याय उत्पन्न होने का आधार 'ध्रुव' है। ध्रुव के आधार के बिना ही यदि उत्पाद हो, तब तो असत् का उत्पाद हो। यदि मिथ्यात्व का व्यय न हो तो सम्यक्त्व का उत्पाद ही न हो और आत्मा की ध्रुवता बिना ही यदि कोई सम्यक्त्व का उत्पाद माने तो उसे असत् की उत्पत्ति होने का प्रसंग आये।

मिट्टी के पिण्ड के अभाव बिना और मिट्टी की ध्रुवता के बिना घड़े का उत्पाद नहीं हो सकता। उसीप्रकार आत्मा में वस्तु की ध्रुवता और अधर्म के नाश के बिना धर्म का उत्पाद नहीं

होगा। ध्रुव त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। यदि ध्रुव के आधार बिना ही उत्पत्ति हो तो असत् की उत्पत्ति होगी।

देखो, सुख चाहिए है न ? तो वह सुख कहाँ ढूँढ़ना ? सुख का आधार ध्रुव आत्मा है और सुख का कारण दुःख का नाश है – उसमें सुख ढूँढे तो सुख मिलेगा। घर के या शरीर, स्त्री, सम्पत्ति के आधार से सुख नहीं मिलेगा किन्तु आत्मा की ध्रुवता के आधार से और आकुलता के अभाव में सुख की प्राप्ति होगी। ध्रुवता सुख के उत्पाद का आधार है और आकुलता का व्यय सुख की उत्पत्ति का कारण है। इन दोनों को न माने तो सुख की उत्पत्ति ही न हो। पर के आश्रय के व्यय से और अपनी ध्रुवता के आश्रय से सुख का उत्पाद होता है। इसलिए सुख के लिए ध्रुव की ही रुचि करना आया। यहाँ कई उदाहरण दिये गये, तदनुसार समस्त द्रव्यों में प्रतिसमय जो उत्पाद होता है, वह ध्रुव और व्यय के बिना नहीं होता, ऐसा समझना। भाई ! यदि तुझे शांति प्रगट करना हो तो उसे तू अपने ध्रुव तत्त्व में ढूँढ। ध्रुव तत्त्व के आधार से शांति की उत्पत्ति होगी। अशांति का अभाव शांति की उत्पत्ति का कारण कहा है, किन्तु उस अशांति का अभाव और शांति की उत्पत्ति कब होती है ? यदि ध्रुव तत्त्व की दृष्टि करे तो। इसप्रकार शांति के लिए ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करना ही आया।

आत्मा और जड़ प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रुव हो रहे हैं। यदि वे उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वतंत्र न हों और दूसरे के कारण हों तो वह पदार्थ ही स्वयंसिद्ध न रहे। प्रत्येक पदार्थ के उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने ही आधीन हैं, एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव वस्तु का स्वभाव ही है। 99वीं गाथा में द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुव वाला है, इतना ही सिद्ध किया था और इस 100वीं गाथा में अधिक स्पष्टता करके द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को एक साथ बतलाते हैं। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रुव को एकसाथ ही न मानें तो वस्तु ही सिद्ध नहीं होती और दोष आता है, उसका यह वर्णन हो रहा है।

कोई मात्र उत्पाद को ही माने और उसके साथ ही व्यय तथा ध्रुव को न माने तो क्या होगा ? – वह कहते हैं। पिण्ड का अभाव, वह घड़े का उत्पादनकारण है। उस उत्पादनकारण बिना घड़े की उत्पत्ति ही नहीं होगी, अथवा तो ध्रुव मिट्टी के बिना ही घड़ा उत्पन्न होने लगेगा। आत्मा में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति चेतन की नित्यता के आधार बिना और मिथ्यात्व के व्यय बिना नहीं हो सकती। परपदार्थ की रुचिरूप पूर्व की मिथ्याभ्रान्ति का नाश हुए बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति को

ढूँढे तो वह नहीं मिलेगी और चैतन्यस्वरूप ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना भी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होगा।

सम्यक्त्व की उत्पत्ति के साथ ही आत्मा की ध्रुवता और मिथ्यात्व का व्यय होता है, उन दोनों को माने बिना सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता। मिट्टी में मिट्टीपने की ध्रुवता और पिण्ड अवस्था के व्यय बिना घड़े की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती और यदि जगत में घड़ेरूप एक भाव की उत्पत्ति न हो तो जगत में सम्यक्त्व, सिद्धदशा आदि किन्हीं भावों की उत्पत्ति ही न हो। और यदि मिट्टी के बिना ही घड़ा हो तो आकाश कुसुम भी हो अर्थात् वस्तु के अस्तित्व बिना अधर से ही नवीन-नवीन भाव उत्पन्न होने लगें - आत्मा के बिना ही सम्यक्त्व उत्पन्न हो, इसप्रकार महान दोष आता है। आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन बिना कभी सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। पर से लाभ होगा - ऐसी जो मिथ्यारुचि है, उस परसन्मुख रुचि के अभाव के बिना और स्वद्रव्य की ध्रुवता के अवलम्बन बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

उसीप्रकार सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति के संबंध में, ध्रुव ज्ञानानन्द आत्मा के अवलम्बन से और अज्ञान के व्यय से सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ध्रुव चैतन्य बिना और अज्ञान के व्यय के बिना सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति ढूँढें तो वह नहीं मिलेगी।

उसीप्रकार चारित्र की उत्पत्ति के संबंध में - बाह्य क्रिया में या शरीर की नग्न अवस्था में आत्मा का चारित्र नहीं है। चारित्र अर्थात् आत्मा की वीतराग पर्याय, वह वीतराग पर्याय राग के अभाव से और ध्रुव चिदानन्द आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न होती है, महाव्रतादि के राग से वह उत्पन्न नहीं होती। ध्रुवता का अवलम्बन और राग का अभाव - इन दोनों के बिना वीतराग भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

इसीप्रकार केवलज्ञान की उत्पत्ति ध्रुव चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन बिना और पूर्व की अपूर्ण ज्ञानदशा के व्यय बिना नहीं होती। आत्मा की ध्रुवता रहकर और अल्पज्ञता का व्यय होकर पूर्णज्ञान की उत्पत्ति होती है।

अन्तिम सिद्धदशा भी आत्मा की ध्रुवता और संसारदशा का व्यय - इन दोनों सहित ही होती है।

इसमें ध्रुवता सद्भावसाधन है और व्यय अभावसाधन है। उपरोक्त दृष्टान्तों के अनुसार जगत के जड़ या चेतन समस्त भावों के उत्पाद में समझना। किसी भी भाव का उत्पाद वस्तु की ध्रुवता के बिना, पूर्व भावों के व्यय बिना नहीं होता।

यदि मिट्टी के बिना ही घड़ा उत्पन्न होने लगे, तब तो आकाशकुसुम की भांति वस्तु के बिना ही जगत में अवस्थाएँ होने लगेंगी। जिसप्रकार आकाश के फूल नहीं हैं; उसीप्रकार ध्रुवस्वभाव के बिना पर्याय का उत्पाद नहीं होता। ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना सम्यक्त्वपर्याय का उत्पाद नहीं हो सकता। जगत में यदि खरगोश के सींग हों, कछुए के बाल हों या आकाश के फूल हों तो ध्रुव के अवलम्बन बिना सम्यक्त्व हो – वह बात कभी नहीं हो सकती। ध्रुव तत्त्व के बिना मात्र शून्य में से ही किसी भाव की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए उत्पाद के साथ ध्रुव और व्यय को भी मानना चाहिए। ऐसा ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप वस्तुस्वरूप है, सर्वज्ञदेव के ज्ञान में इसीप्रकार ज्ञात हुआ है, उनकी वाणी में इसीप्रकार आया है, संतों ने भी इसीप्रकार जानकर कहा है और शास्त्रों में भी यही कथन है। ऐसे वस्तुस्वरूप को जो नहीं जानता, वह वास्तव में देव-गुरु-शास्त्र को नहीं जानता।

देखो भाई ! सत् सरल है, सहज है, सुगम है, किन्तु अज्ञानता से विषम मान लिया है, इसलिए कठिन लगता है। सत्समागम से शांत होकर समझे तो सत् सरल है, सहज है। वह वस्तुस्वभाव समझे बिना किसीप्रकार कल्याण नहीं होता।

वस्तु एकसमय में उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है। विकार की रुचि का अभाव और नित्य आत्मा के अवलम्बन के बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। वस्तु में यदि ध्रुव और व्यय न हो तो उत्पाद नहीं होता। इसप्रकार एक उत्पाद की बात की और मात्र उत्पाद मानने में दोष आता है, वह बतलाया। अब व्यय की बात करते हैं।

2. मात्र व्यय मानने में आने वाले दोष

ध्रुव और उत्पाद के बिना मात्र व्यय मानने में भी दोष आता है। ध्रुव और उत्पाद के बिना मात्र व्यय नहीं होता।

कोई कहे, मिट्टी में पिण्डपर्याय का नाश हुआ किन्तु घटपर्याय की उत्पत्ति नहीं हुई और

मिट्टी स्थायी नहीं रही तो ऐसा नहीं हो सकता। इसीप्रकार कोई कहे कि हमारे परपदार्थों की रुचि का नाश तो हो गया है किन्तु स्वपदार्थ की रुचि उत्पन्न नहीं हुई और आत्मा का ध्रुवपना भासित नहीं हुआ है तो उसकी बात मिथ्या है। जिस क्षण पर में सुखबुद्धि का नाश हुआ, उसी क्षण आत्मा की रुचि न हो और उसकी ध्रुवता का आधार भासित न हो – ऐसा नहीं हो सकता। सम्यक्त्व का उत्पाद और आत्मा की ध्रुवता के बिना मिथ्यात्व का व्यय नहीं होता।

पिण्डदशा के नाश का कारण घड़े की उत्पत्ति है और घड़े में मिट्टीपना स्थायी रहकर पिण्ड का व्यय होता है, पिण्ड का व्यय होने पर भी मिट्टी ध्रुव रहती है। यदि वस्तु में नवीन भावों की उत्पत्ति और वस्तु की ध्रुवता न मानें तो जगत में कारण के अभाव में किन्हीं भावों का नाश ही नहीं होगा अथवा तो सत् का ही सर्वथा नाश हो जावेगा। स्व की रुचि के उत्पाद बिना और ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना ही यदि कोई मिथ्यारुचि का व्यय करना चाहे तो व्यय हो ही नहीं सकता अथवा तो मिथ्यारुचि के नाश के साथ आत्मा का ही नाश हो जायेगा। इसलिए ध्रुव और उत्पाद इन दोनों भावों के बिना मात्र व्यय नहीं होता। ऐसा सभी भावों में समझना।

सर्वज्ञदेव का देखा हुआ और कहा हुआ वस्तु का स्वरूप त्रिकाल सनातन इसीप्रकार वर्त रहा है, उसमें कोई अन्यथा कल्पना करे तो वस्तुस्वरूप में तो कुछ फेरफार नहीं हो सकता, किन्तु उसकी मान्यता में मिथ्यात्व होगा।

कोई कहे कि 'अपने को दूसरा कुछ समझने का काम नहीं है, बस, राग-द्वेष को दूर करो।' तो ऐसा कहनेवाला किस भाव में स्थिर रहकर राग-द्वेष को दूर करेगा ? राग-द्वेष का नाश होने से, वीतरागभाव की उत्पत्ति और आत्मा की ध्रुवता – इन दोनों को माने बिना अपने अस्तित्व को ही नहीं माना जा सकता और राग-द्वेष का नाश भी सिद्ध नहीं होगा। यदि ध्रुवपना न माने तो चेतन की ध्रुवता के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश नहीं होगा। यदि ध्रुव बिना ही राग-द्वेष का नाश होना माने तो राग-द्वेष का नाश होने से आत्मा का अस्तित्व ही नहीं रहा और यदि वीतरागता का उत्पाद न माने तो राग-द्वेष का नाश ही नहीं होगा, क्योंकि दूसरे भाव की उत्पत्ति के बिना पहले के भाव का नाश ही नहीं होता। राग का व्यय, वीतरागता की उत्पत्तिरूप है और उसमें चैतन्यपने की ध्रुवता है। ध्रुव के लक्ष से, वीतरागता की उत्पत्ति होने से, राग का व्यय होता है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों एकसाथ हैं। वीतरागता के उत्पाद बिना राग का व्यय नहीं हो सकता और इसप्रकार

जगत में मिथ्यात्व, अज्ञान, शरीर, घड़ा आदि किसी भाव का व्यय नहीं होगा, यह दोष आयेगा। और चेतन की ध्रुवता के बिना ही राग-द्वेष का नाश हो तो उस राग के साथ सत् आत्मा का भी नाश हो गया, इसलिए ध्रुव के बिना व्यय मानने से जगत में समस्त भावों का नाश हो जायेगा - यह महान दोष आता है। इसलिए वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ ही हैं - ऐसा वस्तुस्वरूप समझना चाहिए।

घड़े की उत्पत्तिरूप व्ययकारण के अभाव में मिट्टी में पिण्ड का व्यय नहीं होगा और यदि पिण्ड का व्यय न हो तो उसकी भांति जगत में अज्ञान, मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि किसी भी भाव का व्यय नहीं होगा। ऐसा दोष आता है और ध्रुवता के बिना राग-द्वेष का नाश होना माने तो उसकी श्रद्धा में आत्मा का नाश हो जाता है। यद्यपि आत्मा का तो नाश नहीं होता, किन्तु आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश करना जो मानता है, उसकी मान्यता में आत्मा का ही अभाव हो जाता है, यानि उसकी मान्यता मिथ्या होती है।

कर्म, पुद्गल की पर्याय है। उस पर्याय का नाश उसकी दूसरी पर्याय के उत्पाद बिना नहीं होता। कर्म का नाश आत्मा करता है - ऐसा तो नहीं है। कर्म आत्मा को बाधक होते हैं, इसलिए उनका नाश करो - ऐसा माननेवाला तो मूढ़ है, किन्तु जो ध्रुवस्वभाव के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश करना माने, वह भी मूढ़ है। जड़ कर्मों का नाश पुद्गल की ध्रुवता को और उसकी नवीन पर्याय के उत्पाद का अवलम्बन लेता है। आत्मा के वीतरागभाव से पुद्गल में कर्मदशा का व्यय हुआ - ऐसा वास्तव में नहीं है। हाँ, आत्मा में ध्रुव के आश्रय से वीतरागता की उत्पत्ति होने से राग का व्यय होता है। वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को उस वस्तु के साथ ही संबंध है, किन्तु एक वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को दूसरी वस्तु के साथ कोई संबंध नहीं है।

यह तो सनातन सत्य वस्तुस्थिति के महान नियम हैं। ईश्वर ने जीव को बनाया है, इसप्रकार ईश्वर को कर्ता माने अथवा तो निमित्त आये, वैसी पर्याय होती है - इसप्रकार दूसरी वस्तु को पर्याय की उत्पत्ति का कारण माने तो वे दोनों मान्यताएँ मिथ्या ही हैं, उसमें वस्तु की स्वतंत्रता नहीं रहती। प्रत्येक वस्तु में प्रतिसमय स्वतंत्र अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है, ऐसी ही वस्तुस्थिति है, कोई ईश्वर या कोई निमित्त उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव में कुछ नहीं करते। कोई ऐसा कहे कि सम्पूर्ण वस्तु को दूसरे ने बनाया है और दूसरा कहे कि वस्तु की अवस्था को दूसरे ने बनाया

है तो उन दोनों की मिथ्या मान्यता में परमार्थतः कोई अंतर नहीं है।

जिसने एकसमय में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव को नहीं जाना, उसकी मान्यता में अवश्य कुछ न कुछ दोष आता है। यदि वस्तु में एक भाव का व्यय होने से उसी समय नवीन भाव की उत्पत्ति न हो और वस्तु की ध्रुवता न रहे तो व्यय होने से सत् का ही नाश हो जायेगा, इसलिए जगत के समस्त पदार्थों का नाश हो जाता है। चैतन्य की ध्रुवता रहकर और सम्यक्त्व भाव की उत्पत्ति होकर ही मिथ्यात्वभाव का व्यय होता है।

प्रत्येक समय का सत् उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है। उन उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को एकसाथ न मानें तो उसकी सिद्धि ही नहीं होती। पर के कारण उत्पाद-व्यय-ध्रुव माने वह तो मिथ्या ही है, और अपने में भी उत्पाद, व्यय या ध्रुव को एक-दूसरे के बिना माने तो वह भी वस्तु को नहीं जानता है। देव-गुरु के कारण अपने में सम्यक्त्व का उत्पाद होना माने तो उसे सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता और अपने में मिथ्यात्व का व्यय तथा आत्मा की ध्रुवता - इन दोनों के बिना सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता। इसीप्रकार मिथ्यात्व का व्यय भी सम्यक्त्व का उत्पाद और चैतन्य की ध्रुवता के बिना सिद्ध नहीं होता।

पैसे खर्च करने से आत्मा को धर्म हो - यह बात मिथ्या है, क्योंकि पैसे की एक पर्याय का व्यय उसकी दूसरी पर्याय के उत्पाद का कारण है, किन्तु आत्मा की धर्मपर्याय के उत्पाद का कारण वह नहीं है। पूर्व पर्याय का विनाश और उत्तर पर्याय की उत्पत्ति उन दोनों को आपस में एक-दूसरे का कारण कहा है। आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन से मिथ्यात्व का नाश हुआ वह सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है। और सम्यक्त्व का उत्पाद हुए बिना तथा आत्मा की ध्रुवता रहे बिना यदि मिथ्यात्व का नाश हो जाये तो उस मिथ्यात्व का नाश होने से आत्मा ही कुछ नहीं रहा, इसलिए मात्र व्यय की मान्यता में आत्मा का ही नाश हो गया और इसीप्रकार जगत के समस्त सत् पदार्थों का उसकी मान्यता में नाश हो जाता है अर्थात् उत्पाद और ध्रुवता के बिना मात्र व्यय को ही माननेवाला नास्तिक जैसा हो जाता है।

अहो ! ध्रुवस्वभाव की सन्मुखता से वीतरागता की उत्पत्ति के बिना यदि राग-द्वेष के नाश का प्रारम्भ करने जाये तो उसके कभी राग-द्वेष का नाश नहीं होता। आत्मा की ध्रुवता को लक्ष में लिए बिना जिसने राग को घटाना माना, उसने उस राग को घटाने से आत्मा को ही घटा दिया। राग

कैसे कम होता है ? राग को कम करने के लक्ष से राग कम नहीं होता, किन्तु यदि ध्रुवता का अवलम्बन ले और वीतरागभाव की उत्पत्ति हो तो राग का व्यय होता है।

जगत के चेतन और जड़ छहों पदार्थों में प्रतिसमय उनके स्वभाव से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। यदि कोई मात्र उत्पाद को ही माने तो वह पदार्थों की ही नवीन उत्पत्ति मानता है और यदि कोई व्यय को ही माने तो वह पदार्थों का ही नाश मानता है - ऐसा माननेवाला जीव सर्वज्ञ को, गुरु को, शास्त्र को या ज्ञेयों के स्वभाव को नहीं मानता और अपने ज्ञानस्वभाव से आत्मा को भी वह नहीं मानता। देव-गुरु-शास्त्र भी ऐसी ही वस्तुस्थिति कहते हैं। ज्ञेय का स्वभाव भी ऐसा ही है और आत्मा का स्वभाव उसे जानने का है - ऐसी वस्तुस्थिति है, वह समझने योग्य है। यह समझे तभी ज्ञान में शांति हो और वीतरागता हो सकती है। यथार्थ वस्तुस्थिति को समझे बिना ज्ञान में कभी शांति या वीतरागता नहीं होती।

1. उत्पाद, व्यय और ध्रुव के बिना नहीं होता।

2. व्यय, उत्पाद और ध्रुव के बिना नहीं होता।

यह दो बातें सिद्ध कीं। उत्पाद और व्यय - दोनों ध्रुव के बिना नहीं होते - इस बात का भी उन दो बोलों में समावेश हो गया। अब, तीसरी बात सिद्ध करते हैं कि -

ध्रुव, उत्पाद और व्यय के बिना नहीं होता। उत्पाद-व्यय के बिना मात्र ध्रुव को मानने से क्या दोष आता है, वह कहते हैं।

3. मात्र ध्रुव मानने में आने वाले दोष

यदि मात्र ध्रुव को ही माना जाये तो वह ध्रुवतत्त्व उत्पाद-व्यय का उल्लंघन कर गया। पिण्ड के नाश बिना और घड़े की उत्पत्ति बिना मिट्टी की ध्रुवता काहे में रहेगी ? परिणाम के बिना परिणामी सिद्ध ही नहीं हो सकता। उत्पाद-व्यय के बिना ध्रुव को निश्चित कौन करेगा ? ध्रुव स्वयं ध्रुव को निश्चित् नहीं करता किन्तु नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय के व्यय द्वारा ध्रुव निश्चित होता है।

'आत्मा मात्र कूटस्थ-ध्रुव है' ऐसा कोई कहे, तो उसने भी 'पहले आत्मा को कूटस्थ नहीं माना था, किन्तु परिणामी माना था' - उस मान्यता का नाश हुआ और 'आत्मा कूटस्थ है' - ऐसी

मान्यता का उत्पाद हुआ, इसप्रकार कूटस्थ माननेवाले में अपने में ही उत्पाद-व्यय आ गये। ऐसे उत्पाद-व्यय के बिना कूटस्थ माननेवाला भी सिद्ध नहीं होता।

कोई कहे कि हमें तो मात्र ध्रुव ही रखना है, उत्पाद-व्यय नहीं चाहिए, तो मात्र उस ध्रुव को ही प्राप्त करनेवाले को, उत्पाद-व्यय से रहित ध्रुवता ही नहीं रहेगी अथवा तो क्षणिक उत्पाद-व्यय स्वयं ही ध्रुव हो जायेंगे। यदि एक वस्तु ध्रुव न रहे तो जगत की कोई वस्तु ध्रुव नहीं रहेगी। अथवा राग-द्वेष आदि जो क्षणिक विकल्प हैं, वे भी ध्रुव ही हो जायेंगे, इसलिए प्रतिक्षण होनेवाले विकल्प ही द्रव्य हो जायेंगे, यह महान दोष आता है।

वस्तु एकान्त नित्य नहीं है किन्तु अनेकान्तस्वरूप है। वस्तु नित्य-अनित्यरूप, एक-अनेकरूप - ऐसे अनेकान्तस्वरूपवाली है। वस्तु में यदि नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय का व्यय न हो तो उसकी अनित्यता, अनेकता ही सिद्ध नहीं होगी। अथवा क्षणिक उत्पाद-व्यय स्वयं ही ध्रुव हो जायेगा, इसलिए प्रतिसमय का द्रव्य भिन्न-भिन्न ही सिद्ध होगा और वस्तु को सर्वथा अनेकता ही हो जायेगी। ऐसा होने से वस्तु की अखण्ड एकता-नित्यता सिद्ध नहीं होगी। इसलिए अनेकान्तमय वस्तु में नवीन भाव की उत्पत्तिसहित और पुराने भाव के नाशसहित ही ध्रुवता है - ऐसा मानना।

पहले की पर्याय का व्यय, पीछे की पर्याय का उत्पाद और अखण्ड संबंध की अपेक्षा से ध्रुवता - इन तीनों के साथ द्रव्य अविनाभावी है, ऐसा द्रव्य अबाधितरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप (त्रिलक्षणरूप) चिह्नवाला है - ऐसा अवश्य संमत करना।

व्याख्यान के पश्चात्

यहाँ उत्पाद में नवीन भाव की उत्पत्ति करना है, इसलिए उसमें 'सर्ग को शोधनेवाला' ऐसी भाषा का उपयोग किया है।

व्यय में वर्तमान भाव का नाश है, इसलिए उसमें संहार को आरम्भ करने वाला' - ऐसी भाषा का उपयोग किया है।

ध्रुव में जो है, उसकी स्थिति की बात है, इसलिए 'स्थिति प्राप्त करने के लिए जाने वाला' – ऐसी भाषा का उपयोग किया है। इसप्रकार तीनों बोलों की शैली में अन्तर डाला है।

(मगसिर कृष्णा 30 के दिन सबेरे प्रवचनसार का व्याख्यान बन्द था)

मगसिर शुक्ला 1 : रविवार

(प्रवचनसार गाथा 100 का सार)

प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। यदि उन तीनों को एकसाथ न माना जाये तो उसमें दोष आता है, वह दोष बतलाकर उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अविनाभावीपना इस गाथा में दृढ़ किया है।

1. यदि मात्र उत्पाद ही माना जाये तो

1. पुरानी पर्याय के व्यय बिना नवीन पर्याय की उत्पत्ति नहीं होगी। अथवा

2. ध्रुव के आधार बिना असत् की उत्पत्ति होगी, इसलिए एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों साथ हों, तभी उत्पाद होगा।

2. यदि मात्र व्यय ही माना जाये तो

1. नवीन पर्याय के उत्पाद बिना पुरानी पर्याय का व्यय ही नहीं होगा। अथवा

2. ध्रुवपना रहे बिना ही व्यय होगा तो सत् का ही नाश हो जायेगा। इसलिए एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों साथ ही हों, तभी व्यय सिद्ध होगा।

3. उत्पाद-व्यय के बिना मात्र ध्रुव को ही मानें तो

1. उत्पाद-व्ययरूप व्यतिरेक के बिना ध्रुवपना ही नहीं रहेगा। अथवा

2. एक अंश है, वही सम्पूर्ण उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक समय में साथ ही हों तभी ध्रुवपना रह सकेगा।

मिट्टी में घड़ा आदि किसी भी एक पर्याय के उत्पाद बिना और पिण्ड आदि किसी एक पूर्व

पर्याय के व्यय बिना मिट्टी की ध्रुवता ही नहीं रहेगी और यदि मिट्टी की ध्रुवता न रहे तो मिट्टी की भांति जगत के किन्हीं भी भावों की ध्रुवता नहीं रहेगी, सर्वनाश हो जायेगा।

अथवा जो क्षणिक है, वही ध्रुव हो जाये तो मन के विकल्प – राग–द्वेष–अज्ञान–कर्म यह सब ध्रुव हो जायेंगे। यदि उत्पाद–व्यय न हों तो अज्ञान का नाश करके सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, संसार का व्यय होकर सिद्धदशा की उत्पत्ति, क्रोधभाव दूर होकर क्षमाभाव की उत्पत्ति – ऐसा कुछ भी नहीं रहेगा।

इसलिए द्रव्य को उत्पाद–व्यय–ध्रुववाला एक साथ ही मानना। वह किसप्रकार ? पूर्व–पूर्व परिणामों के व्यय के बिना, पीछे–पीछे के परिणामों के उत्पाद के साथ और अन्वय अपेक्षा से ध्रुव के साथ द्रव्य को अविनाभाववाला मानना। उत्पाद–व्यय और ध्रुव – यह तीनों एकसाथ निर्विघ्नरूप से द्रव्य में हैं – ऐसा संमत करना, नि:संदेहरूप से निश्चित करना। मात्र उत्पाद, मात्र व्यय या मात्र ध्रुवता द्रव्य का लक्षण नहीं है किन्तु उत्पाद–व्यय और ध्रुव – यह तीनों एक साथ ही द्रव्य का लक्षण है – ऐसा जानना।

गाथा 100 पूर्ण

पदार्थ के स्वरूप का सूक्ष्म विज्ञान

इस प्रवचनसार के ज्ञेय अधिकार की 100वीं गाथा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अविनाभावी दृढ़ किया।

अब उत्पादादिक का द्रव्य से अर्थान्तरपना नष्ट करते हैं अर्थात् ये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं है, किन्तु वह सब एक द्रव्य ही है - ऐसा सिद्ध करते हैं -

(गाथा-101)

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।
दव्वे हि संति णियदं तम्हा दव्व हवदि सव्वं।।101।।

उत्पाद तेम ज ध्रौव्य ने संहार वर्ते पर्यये,
ने पर्ययो द्रव्ये नियमथी सर्व तेथी द्रव्य छे।।

उत्पाद, स्थिति और भंग पर्यायों में वर्तते हैं, पर्यायें नियम से द्रव्य में होती हैं, इसलिए (वह) सब द्रव्य है।

- टीका -

'उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का आलंबन लेते हैं और ये पर्यायें द्रव्य का अवलम्बन लेती हैं, इसलिए यह सब एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं है।'

अब उसका विस्तार से स्पष्टीकरण करते हैं -

'प्रथम तो द्रव्य और पर्यायों द्वारा आलंबित होता है, क्योंकि समुदायी समुदायस्वरूप होता है।'

द्रव्य का ही नाश, द्रव्य का ही उत्पाद या द्रव्य की ही ध्रुवता - ऐसा नहीं है, उस एक-एक में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आ जाता, किन्तु उत्पाद किसी पर्याय का है, व्यय भी पर्याय का है और ध्रुवता

भी पर्याय की है, इसलिए उत्पाद, व्यय और ध्रुव – यह तीनों, तीन पर्यायों के अवलम्बन से हैं और उन पर्यायों का समुदाय द्रव्य का अवलम्बन लेता है। (यहाँ 'पर्याय' का अर्थ द्रव्य का एक अंश समझना।) पर्याय अंश है और द्रव्य अंशी है। द्रव्य समुदायी है, वह पर्यायों के समुदाय से बना है। जिसप्रकार 'समुदायी वृक्ष स्कंध, मूल और शाखाओं के समुदायस्वरूप होने से स्कंध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित होता है, उसीप्रकार समुदायी द्रव्य, पर्यायों के समुदायस्वरूप होने से पर्यायों द्वारा आलम्बित ही भासित होता है।' तना, मूल और डालियाँ – यह तीनों वृक्ष के अंश हैं और वे तीनों मिलकर पूरा वृक्ष है। उसीप्रकार पर्यायें वस्तु के अंश हैं, वे पर्यायें वस्तु के अंश वस्तु से पृथक् नहीं हैं।

पहले 100वीं गाथा में तो द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ-परस्पर अविनाभावी हैं – ऐसा सिद्ध किया। अब यहाँ यह सिद्ध करते हैं कि वे उत्पाद, व्यय और ध्रुव किसके हैं? द्रव्य के या पर्याय के ? उत्पाद, व्यय और ध्रुव पर्यायों के हैं, द्रव्य के नहीं हैं और वे उत्पाद, व्यय, ध्रुव वाली तीनों पर्यायें (अंश) द्रव्य के ही आश्रय से हैं। द्रव्य के आश्रय से पर्यायें हैं और उन पर्यायों के अवलम्बन से उत्पाद, व्यय, ध्रुव हैं।

'पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा आलम्बित होती हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रित हैं, क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं।' वस्तु में उत्पाद, व्यय और ध्रुव हैं, वे पर के कारण नहीं हैं, पर में नहीं हैं और पर के भी नहीं हैं, किन्तु वे अपनी पर्याय के ही हैं। उत्पाद पर्याय का है, व्यय भी पर्याय का है और ध्रुवता भी पर्याय की है। इन तीनों अंशों के समुदायस्वरूप वस्तु है। आत्मा में सम्यग्दर्शन हुआ, उस समय के उत्पाद-व्यय-ध्रुव इस प्रकार हैं—उस समय सम्यक्त्वपर्याय की अपेक्षा से उत्पाद है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा उत्पन्न नहीं हुआ है; मिथ्यात्वपर्याय की अपेक्षा से व्यय है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा व्यय को प्राप्त नहीं हुआ है; और अखण्ड प्रवाह में वर्तते हुए ध्रुव अंश की अपेक्षा से ध्रुवता है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा ध्रुव नहीं है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुव द्रव्य के नहीं हैं, किन्तु द्रव्य के एक-एक अंश के हैं और वे अंश द्रव्य के हैं। दूसरे की पर्याय के कारण या दूसरे की पर्याय में वे अंश नहीं हैं। विकार आत्मा का स्थायी स्वभाव नहीं है, इसलिए उस अंश का उत्पाद पर में होता होगा ? तो कहते हैं कि नहीं, उस विकार का उत्पाद भी आत्मा की पर्याय के आश्रित है और वह पर्याय आत्मद्रव्य के आश्रय से बनी हुई है, कर्म के उदय

के आश्रय से वह विकारी पर्याय स्थित नहीं है। विकारी पर्याय भी स्वज्ञेय का अंश है। विकार अंश को यदि पर का अथवा पर के कारण हुआ कहा जाये तो सम्पूर्ण स्वज्ञेय सिद्ध नहीं होता। एक अंश को निकाल देने से आत्मा ही सिद्ध नहीं होगा और यदि उस विकार के उत्पाद को अंश का (पर्याय का) न मान कर द्रव्य का ही माना जाये तो सम्पूर्ण द्रव्य ही विकारमय हो जायेगा; इसलिए विकाररहित स्वभाव है, वह स्वज्ञेयरूप से नहीं रहेगा और विकार दूर होकर अविकारीपना भी नहीं हो सकेगा।

उत्पाद, व्यय, ध्रुव किसके होते हैं ? पर्याय के।

पर्याय काहे में होती है ? द्रव्य में।

इसप्रकार सबको एक द्रव्य में ही समा दिया है।

घट, पिण्ड और मिट्टीपना – इन तीनों अंशों के समुदायस्वरूप मिट्टी है। इन तीन अंशों के बिना मिट्टी सिद्ध नहीं हो सकती। उसमें उत्पाद, घट के आश्रय से है; व्यय, पिण्ड के आश्रय से है; और ध्रुवता, मिट्टीपने के आश्रय से है तथा वह घट, पिण्ड और मिट्टीपना, यह तीनों अंश मिट्टी के आश्रय से हैं। इसप्रकार एक मिट्टी में सब समा जाते हैं।

जीव में रागादि उदयभाव हुआ, वह उदयभाव किसका ? द्रव्य का, पर्याय का या पर का ? तो कहते हैं कि वह उदयभाव पर का नहीं है, वह उदयभाव द्रव्य का नहीं है, किन्तु वह उदयभाव उस समय की आत्मा की पर्याय का है। उदयभाव स्वज्ञेय की पर्याय है।

1. उत्पाद, व्यय, ध्रुव – तीनों एक साथ हैं, यह बात 100वीं गाथा में सिद्ध की।

2. अब यहाँ, उत्पाद, व्यय, ध्रुव अंश के (पर्याय के) हैं और

3. वे पर्यायें (अंश) द्रव्य की हैं – ऐसा कहकर उन सबको एक द्रव्य में ही समा देते हैं।

किसी भाव का उत्पाद होने से सम्पूर्ण द्रव्य ही नवीन उत्पन्न नहीं होता किन्तु नवीन पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय, द्रव्य के आश्रित है।

किसी भाव का व्यय होने से सम्पूर्ण द्रव्य ही नाश को प्राप्त नहीं होता, किन्तु पर्याय नष्ट होती है और वह पर्याय, द्रव्य के आश्रित है।

परिणामों के प्रवाह में ध्रुवतारूप से द्रव्य ही ध्रुव नहीं है, किन्तु अंश की अपेक्षा से ध्रुवता है, ध्रुवता भी द्रव्य का एक अंश है – सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है। किन्तु वह ध्रुव अंश द्रव्य के आश्रय से है।

इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंश के हैं और उन अंशों का समूह द्रव्य है। इसप्रकार 'द्रव्य' में सब समा जाते हैं।

उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव द्रव्य के ही आश्रय से नहीं हैं अर्थात् द्रव्य के ही उत्पाद, व्यय या ध्रुव नहीं हैं, किन्तु पर्याय के हैं और वे पर्यायें द्रव्य की हैं। उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव – उनमें से किसी एक में ही सम्पूर्ण द्रव्य का समावेश नहीं हो जाता किन्तु वे तो एक-एक पर्याय के हैं। उत्पाद सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता किन्तु उत्पन्न होनेवाली पर्याय को बतलाता है; व्यय भी सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता है तथा ध्रुव भी सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता, किन्तु वह पर्याय को (अंश को) ही बतलाता है। इसप्रकार वे प्रत्येक एक-एक पर्याय को बतलाते हैं और उन तीनों पर्यायों का समूह द्रव्य को बतलाता है – द्रव्य, पर्यायों के समूहस्वरूप है।

किसी भी द्रव्य का कोई भी एक समय लो तो उसमें उत्पाद, व्यय और ध्रुव – तीनों एकसाथ पर्यायों के आश्रय से हैं। मात्र उत्पाद में, व्यय में या ध्रुव में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आ जाता; इसलिए वे द्रव्य के आश्रय से नहीं, किन्तु पर्यायों के आश्रय से है – ऐसा कहा है। उत्पाद धर्म किसी पर्याय के आश्रय से है, व्यय धर्म भी किसी पर्याय के आश्रय से है और ध्रौव्यत्वरूप धर्म भी किसी पर्याय (अंश) के आश्रय से है, इसलिए उन्हें पर्यायों के धर्म कहे हैं और पर्यायें, द्रव्य के आश्रय से हैं। इसप्रकार अभेदरूप से द्रव्य में सब समा जाता है।

यह बात वृक्ष का उदाहरण देकर समझावेंगे।

मगसिर शुक्ला 2-3, सोमवार

(प्रवचनसार गाथा 101 चालू)

उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंशों के आश्रय से हैं और वे अंश द्रव्य का आलम्बन लेते हैं। उत्पाद भी अंश का है, व्यय भी अंश का है और ध्रुवता भी अंश की है, उस एक-एक अंश में सम्पूर्ण वस्तु नहीं समा जाती, किन्तु अंशों के पिण्डरूप वस्तु है। वस्तु अंशी है और उत्पादादि से आलम्बित पर्यायें उसके अंश हैं। बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भांति।

'जिसप्रकार अंशी वृक्ष के बीज-अंकुर-वृक्षत्वरूप तीन अंश भंग-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों द्वारा आलंबित एक ही साथ भासित होते हैं, उसीप्रकार अंशी द्रव्य के नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और अवस्थित भाव - ऐसे तीन अंश भंग-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निजधर्मों द्वारा आलंबित एक ही साथ भासित होते हैं।

वस्तु में उत्पाद भी अंश का है, व्यय भी अंश का है और ध्रुवता भी अंश की है। उस एक-एक अंश में सम्पूर्ण वस्तु का समावेश नहीं हो जाता अर्थात् द्रव्य की उत्पत्ति, द्रव्य का ही नाश या द्रव्य की ही ध्रुवता नहीं है। जिसप्रकार एक वृक्ष में बीज, अंकुर और वृक्षत्व - ऐसे तीन अंश हैं, उनमें बीज-अंश का व्यय, अंकुर-अंश का उत्पाद और वृक्षत्व-अंश की ध्रुवता है, वे तीनों अंश मिलकर झाड़ का (वृक्ष का) अस्तित्व है। उसीप्रकार आत्मवस्तु में-सम्यक्त्व-अंश का उत्पाद, मिथ्यात्व-अंश का व्यय और श्रद्धापने की ध्रुवता है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुव अंशों के हैं, अंशी के नहीं हैं। द्रव्य की अपेक्षा से ही उत्पाद नहीं है, किन्तु द्रव्य में उत्पन्न होनेवाले भाव की अपेक्षा से उत्पाद है; द्रव्य की अपेक्षा से व्यय नहीं है किन्तु पूर्व के नष्ट होनेवाले भाव की अपेक्षा से व्यय है और सम्पूर्ण द्रव्य की अपेक्षा से ध्रुवता नहीं है, किन्तु द्रव्य अखण्ड स्थायी भाव की अपेक्षा से (द्रव्यत्व की अपेक्षा से) ध्रुवता है। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव प्रत्येक, अंश के आश्रित हैं। जिस क्षण वस्तु नवीन भाव से उत्पन्न होती है, उसी क्षण पूर्व भाव से व्यय को प्राप्त होती है और उसी क्षण द्रव्यरूप से ध्रुव रहती है, इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ ही अंशों के अवलम्बन से हैं, किन्तु अंशी के ही उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव नहीं है। यहाँ ध्रुव को भी अंश की अपेक्षा से पर्याय कहा है, किन्तु उसमें द्रव्य का सामान्य भाग है। परन्तु मात्र उस ध्रुव में ही सम्पूर्ण वस्तु का समावेश नहीं होता, इसलिए उसे भी अंश कहा है और अंश होने से पर्याय कहा है। इस अपेक्षा से ध्रुवता भी पर्याय के आश्रित कही गई है।

यदि अंशी वस्तु के ही उत्पाद, व्यय या ध्रुव माने जायें तो उसमें दोष आता है और अंधाधुंधी हो जाती है। किसप्रकार दोष आता है, वह समझाते हैं।

1. द्रव्य का ही व्यय माना जाये तो -

यदि पूर्व के अंश का व्यय न मानकर द्रव्य का ही व्यय माना जाये तो (1) द्रव्य एक क्षण में नाश को प्राप्त हो जाने वाला हो जायेगा, इसलिए एक क्षण में ही समस्त द्रव्यों का सर्वथा नाश हो

जायेगा अथवा तो (2) सत् का ही नाश हो जायेगा।

यदि मिथ्यात्वपर्याय का नाश न मानकर आत्मद्रव्य का ही नाश माना जाये तो आत्मा एक क्षण में ही नाश को प्राप्त हो जायेगा, पहले क्षण के सत् का दूसरे क्षण नाश हो जायेगा। अंश का नाश है, उसके बदले अंशी का ही नाश मानने से एक क्षण में ही समस्त द्रव्यों का अभाव ही हो जायेगा, इसलिए द्रव्यों की शून्यता हो जायेगी, अथवा सत् पदार्थों का ही नाश हो जायेगा।

द्रव्य का ही व्यय मानने से (1) प्रथम तो द्रव्यों का सर्वथा अभाव सिद्ध होगा – यह दोष कहा, अथवा तो (2) 'भाव' का अभाव हो जायेगा – यह दूसरा दोष कहा। पहले में तो 'मात्र अभाव' कहा और दूसरे में 'भाव का अभाव' होना कहा, इसलिए द्रव्य का ही व्यय नहीं है, किन्तु द्रव्य के अंश का ही व्यय है। और वह अंश, अंशी का है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव अंशों के आश्रय से हैं और वे अंश, अंशी पदार्थ के आश्रित हैं, किन्तु किसी द्रव्य का कोई अंश दूसरे द्रव्य के आश्रित नहीं है, और विकारी या निर्विकारी किसी भी भाव का उत्पाद-व्यय भी दूसरे के आश्रित नहीं है, किन्तु उस-उस पर्याय के ही आश्रित है। राग का उत्पाद कर्म के आश्रय से नहीं है, किन्तु उस समय की पर्याय के आश्रित है। इस जीव के मिथ्यात्व का व्यय देव-गुरु के आश्रित नहीं है, किन्तु पूर्व पर्याय के आश्रित ही है। इसप्रकार पर्यायें स्वयं ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव का आश्रय हैं।

2. द्रव्य का ही उत्पाद माना जाये तो –

यदि अंश का उत्पाद न मानकर द्रव्य का ही उत्पाद माना जाये तो क्षणिक पर्याय ही द्रव्य हो जायेगी, इसलिए प्रतिक्षण नवीन-नवीन द्रव्य ही उत्पन्न होने लगेगा। द्रव्य की अनन्त पर्यायों में से प्रत्येक पर्याय स्वयं ही द्रव्य हो जायेगी। इसलिए एक द्रव्य को ही अनंत द्रव्यपना आयेगा। अथवा तो वस्तु के बिना असत् का ही उत्पाद होने लगेगा। मिट्टी में घट अवस्था उत्पन्न होती है, किन्तु मिट्टी स्वयं उत्पन्न नहीं होती, उसीप्रकार वस्तु में उसके नवीन परिणाम उत्पन्न होते हैं, किन्तु वस्तु स्वयं उत्पन्न नहीं होती। एक अंश के उत्पाद को यदि द्रव्य ही माना जाये तो एक पर्याय स्वयं ही सम्पूर्ण हो जावेगी; इसलिए द्रव्य की अनंत पर्यायें वे अनंत द्रव्य हो जावेंगे। इसप्रकार एक द्रव्य को ही अनंत द्रव्यपना हो जायेगा, यह दोष आता है। हाँ, एक द्रव्य में अनंत गुण होते हैं और एक द्रव्य की अनंत पर्यायें भी होती हैं, किन्तु एक द्रव्य के अनंत द्रव्य नहीं होते। द्रव्य की पर्याय नवीन उत्पन्न होती है किन्तु स्वयं द्रव्य नवीन उत्पन्न नहीं होता। यदि द्रव्य स्वयं उत्पन्न हो तो असत् की ही

उत्पत्ति होगी। इसप्रकार द्रव्य का ही उत्पाद मानने में दो दोष आते हैं। प्रथम तो, एक ही द्रव्य अनंत द्रव्यरूप हो जायेगा, और दूसरे असत् की ही उत्पत्ति होगी। इसलिए उत्पाद, द्रव्य का ही नहीं है किन्तु उत्पन्न होनेवाले भाव का है, और उस उत्पन्न होनेवाले भावरूप अंश द्रव्य का है।

3. द्रव्य का ही ध्रौव्य माना जाये तो –

यदि सम्पूर्ण द्रव्य को ही ध्रुव माना जाये तो क्रमशः होनेवाले उत्पाद-व्यय भावों के बिना द्रव्य का ही अभाव हो जायेगा अथवा द्रव्य को क्षणिकपना हो जायेगा। वस्तु मात्र ध्रुवरूप नहीं है किन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है। उसके बदले मात्र ध्रुव अंश को ही वस्तु मान लिया और अंशी को नहीं माना तो द्रव्य क्षणिक हो जायेगा। इसलिए वस्तु ही ध्रुव नहीं है, किन्तु वस्तु का एक अंश ध्रुव है।

एक ही समय में उत्पाद-व्यय होते हैं, किन्तु वे उत्पाद-व्यय एक ही समय की पर्याय के नहीं हैं, एक समय में उत्पाद वर्तमान पर्याय का है और व्यय पूर्व पर्याय का है। एक ही समय में जिसका व्यय है, उसका उत्पाद नहीं है और जिसका उत्पाद है, उसका व्यय नहीं है। उत्पााद से आलंबित पृथक् पर्याय है और व्यय से आलंबित पृथक् पर्याय है, किन्तु उन उत्पाद-व्यय दोनों का काल एक ही है। जिससमय जिस पर्याय का उत्पाद नहीं है और जिस समय जिस पर्याय का उत्पाद है, उसी समय उसका व्यय नहीं है। एक का व्यय और दूसरी का उत्पाद, दूसरी का व्यय और तीसरी का उत्पाद – इसप्रकार होने से वे क्रमशः होनेवाले भाव हैं। जब बीज का व्यय हो, तब अंकुर का उत्पाद होता है, इसलिए बीज और अंकुर क्रमशः होनेवाले भाव हैं, उन के बिना वृक्ष की ध्रुवता नहीं रहती। उत्पाद-व्यय के बिना क्रमशः होनेवाले भाव नहीं बन सकते और क्रमशः होनेवाले भावों के बिना द्रव्य का अस्तित्व नहीं रह सकता। जिसने मात्र द्रव्य को ही ध्रुव मान लिया है, उसके द्रव्य में पूर्व पर्याय का व्यय और पीछे की पर्याय का उत्पाद – ऐसे क्रमशः होनेवाले भाव नहीं रहते। पूर्व का व्यय और पीछे का उत्पाद – ऐसे क्रमशः होने वाले भावों के बिना उसका ध्रुवतत्त्व कहाँ स्थिर रहेगा ? इसलिए उसे ध्रुव द्रव्य का ही अभाव हो जायेगा, अथवा तो उसके मत में द्रव्य क्षणिक ही हो जायेगा। इसप्रकार द्रव्य का ही ध्रुव मानने में भी दोष आता है। ध्रुवता द्रव्य की ही नहीं है, किन्तु द्रव्य के स्थायी अंश की है।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव – यह तीनों एक साथ हैं, किन्तु वे अंशों के हैं, द्रव्य के नहीं हैं।

उत्पाद-व्यय और ध्रुव इन तीनों को एक साथ न मानकर मात्र उत्पाद को, व्यय को या ध्रुव को ही माने तो कौन से दोष आते हैं, यह बात 100वीं गाथा में बतलाई थी।

यहाँ, द्रव्य का ही उत्पाद, द्रव्य का ही व्यय और द्रव्य की ही ध्रुवता माने तो कौन से दोष आते हैं, वह इस 101वीं गाथा में बतलाया।

इस (101वीं) गाथा में आचार्यदेव को यह सिद्ध करना है कि उत्पाद, व्यय और ध्रुव यह द्रव्य से पृथक् कोई पदार्थ नहीं है, किन्तु द्रव्य में ही उन सबका समावेश हो जाता है।

(1) यदि द्रव्य का ही उत्पाद मान लिया जाये तो व्यय और ध्रुव का समावेश द्रव्य में नहीं होगा और दोष आ जायेगा।

(2) यदि द्रव्य का ही व्यय मान लिया जाये तो उत्पाद और ध्रुव का समावेश द्रव्य में नहीं होगा और दोष आ जायेगा।

(3) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य मान लिया जाये तो उत्पाद और व्यय का समावेश द्रव्य में नहीं होगा और दोष आ जायेगा।

इसलिए, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा पर्यायें आलंबित हों और पर्यायों द्वारा अन्य आलंबित हो कि जिससे यह सब एक ही द्रव्य हो। आचार्यदेव ने न्याय और युक्तिपूर्वक वस्तुस्वरूप सिद्ध किया है। द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न नहीं होता, स्वयं ही नाश को प्राप्त नहीं होता और स्वयं ही ध्रुव नहीं रहता, किन्तु उसके अंश का उत्पाद है, अंश का व्यय है और अंश की ध्रुवता है। इसलिए वे उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य अंशों के (पर्यायों के) हैं और वे पर्यायें द्रव्य की हैं। इससे सब एक ही द्रव्य है।●●

जिनवाणी माता जागृत करती हैं

प्रत्येक आत्मा स्व में अनंत पुरुषार्थ कर सकता है। किन्तु पर में कुछ नहीं कर सकता। मैं पर का कर सकता हूँ – ऐसा माने भले, किन्तु पर का कुछ नहीं कर सकता। जैसी स्वतंत्रता है, वैसी कही जा रही है, तू अस्वीकार मत करना। तेरी प्रभुता के गीत गाये जा रहे हैं। जिसप्रकार बालक को सुलाने के लिए माता लोरियाँ गाती है कि 'मेरा राजा बहुत सयाना' और अपनी प्रशंसा सुनकर बालक सो जाता है; उसीप्रकार यहाँ आचार्यदेव आत्मा को जागृत करने के लिए 'सयाना' अर्थात् 'तू सिद्ध परमात्मा के समान चैतन्यज्योति है' – ऐसा कहते हैं। लौकिक माता बालक को सुलाने के लिए गीत गाती है, यहाँ जिनवाणी माता आत्मा को जागृत करने के लिए गीत गाती है। बालक को सुलाने के लिए पालने में लेटा देते हैं और वह गीत सुनकर सो जाता है, उसीप्रकार अज्ञानी बालक को ज्ञानी संबोधते हैं कि तू चौरासी की गोद को अपना मानकर अज्ञानरूप से सो रहा है, तुझे जागृत करने के लिए गीत गाये जा रहे हैं, तुझे जागना ही पड़ेगा। माता के गीत तो सुलाने के लिए होते हैं और यह गीत जगाने के लिए हैं। इसप्रकार संसार और मोक्ष की रीति में उदय-अस्त जितना अंतर है। बालक की प्रशंसा करने से वह सो जाता है तो उसमें उसे अपने बड़प्पन की रुचि है, इसलिए बड़प्पन का आदर लाकर संतोष मान लेता है। उसीप्रकार यहाँ 'तू सिद्ध है' – इसप्रकार जीव को उसका सच्चा बड़प्पन बतला कर श्री आचार्यदेव जागृत करते हैं। हे जीव ! तू मिथ्याबुद्धि की गोद में अनादिकाल से सो रहा है, अब तुझे तेरी प्रभुता की महिमा गाकर श्री आचार्यदेव जागृत करते हैं, तू अपनी प्रभुता का अस्वीकार करे – यह नहीं चल सकता, यह किसकी लगा रखी है ? त्रिलोकीनाथ सिद्ध भगवान जिस पद को प्राप्त हुए, वही तेरा पद है – इसप्रकार तेरी प्रभुता के गीत गाये जा रहे हैं, शास्त्र भी तेरे गीत गा रहे हैं। जाग रे जाग ! क्षण लाखों का जा रहा है। तू अपने को न समझे, यह कैसे चल सकता है ?

आत्मा का स्वरूप सरल रीति से कहा जाता है, किन्तु लोगों ने उसे महा कठिन मान रखा है। 'हमारी समझ में नहीं आ सकता' – ऐसा मानना तो स्वयं अपने को गालियाँ देने जैसा है। सच्ची समझ के लिए आत्मा को अपात्र कहना, उसे कलंकित करने के समान है। हे भाई ! जो अनंत सिद्ध परमात्मा कर सके, वही कहा जाता है और तुझमें भी उतनी शक्ति है, तेरी शक्ति से अधिक नहीं कहा जाता।

– समयसार प्रवचन से

श्रुतदेवता जयवंत हो !

वीर सं. 2475 के ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन
लाठी शहर में पूज्य श्री कानजी स्वामी का प्रवचन

मांगलिक

आज यहाँ के जिनमंदिर में भगवान श्री सीमंधर प्रभु की प्रतिष्ठा का दिन है, इसलिए मांगलिक है और श्रुतपूजा का पवित्र दिवस (श्रुतपंचमी) होने से भी आज मांगलिक है। दो हजार वर्ष पूर्व श्रुतज्ञान की प्रतिष्ठा का महामहोत्सव आज के दिन हुआ था और आज यहाँ श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा हो रही है, इसलिए आज दुगुना मांगलिक महोत्सव है।

श्रुतपंचमी का इतिहास

इस सौराष्ट्र देश में आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व गिरनार पर्वत की चंद्रगुफा में श्री धरसेन मुनि नाम के महान दिगंबर संत आचार्य ध्यान करते थे। उन्हें अंगपूर्व के एकदेश का ज्ञान था। वे महान विद्वान और श्रुतवत्सल थे।

उन्हें ऐसा भय हुआ कि 'अब मेरे पश्चात् अंगश्रुत विच्छेद हो जायेगा।' इसलिए अपना अंगश्रुत ज्ञान किन्हीं समर्थ मुनिओं को पढ़ाने का विकल्प उठा। इसलिए उन्होंने दक्षिणदेश में धर्मोत्सव प्रसंग पर एकत्रित हुए आचार्यों को संदेशा भेजा। धरसेनाचार्य देव के आशय को समझ कर उन आचार्यों ने पुष्पदंत और भूतबलि नाम के दो महासमर्थ और विनयवंत मुनिओं को उनके पास भेजा।

जब वे दो मुनि आ रहे थे, उसी समय यहाँ श्री धरसेनाचार्यदेव ने ऐसा मंगलस्वप्न देखा कि दो उत्तम सफेद बैल तीन प्रदक्षिणा देकर नम्रतापूर्वक अपने चरणों में नमस्कार कर रहे हैं। यह स्वप्न देखकर उत्साह से 'श्रुतदेवता जयवंत हों' ऐसा आशीर्वाद वचन आचार्यदेव के मुख से निकला। उसी दिन श्री पुष्पदन्त और भूतबलि मुनिराज आ पहुँचे। श्री आचार्यदेव ने हीनाधिक

अक्षरों वाली विद्या साधने को देकर उनकी परीक्षा की। पश्चात् सर्वज्ञ परम्परा से चले आ रहे श्रुतज्ञान का अंश (षट् खण्डागम) उन्हें पढ़ाया। तत्पश्चात् उन पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य भगवन्तों ने षट्खण्डागम की रचना की और ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन अंकलेश्वर में महा-महोत्सव करके चतुर्विध संघरहित पवित्र श्रुतज्ञान की पूजा की, उस समय से लेकर आज का दिवस 'श्रुतपंचमी' के नाम से प्रसिद्ध है और वह प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

इसप्रकार आज श्रुत की प्रतिष्ठा का महामांगलिक दिवस है और यहाँ भी श्री सीमंधर भगवान की प्रतिष्ठा का महोत्सव है, इसप्रकार मांगलिक में मांगलिक का मेल बैठ गया।

श्री वीर प्रभु के श्रीमुख से प्रवाहित ज्ञानगंगा के प्रवाह को
अच्छिन्नरूप से प्रवाहित रखनेवाली श्रुतपंचमी मनाओ !

परमात्मा की भक्ति

पूर्ण स्वाधीन स्वरूप के भान बिना परमात्मा की भक्ति नहीं हो सकती, परमात्मा की पहिचान बिना राग का-विकार का-संसारपक्ष का बहुमान करेगा। स्वरूप के भानवाला तो नि:शंकरूप से पूर्ण को (साध्य को) नमस्कार करता हुआ, अखण्डरूप से अखण्ड सत् के बहुमान (भक्ति) द्वारा पूर्ण को प्राप्त हो जाता है। एक समय में तीन काल तीन लोक को जानने का सामर्थ्य शक्तिरूप से प्रत्येक आत्मा में है, ऐसे अनंत आत्मा हैं, प्रत्येक आत्मा पर से भिन्न, अकेला सर्वज्ञ है। त्रिकाली द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमय अनंत पदार्थों को सर्वरीति से जाने ऐसा प्रत्येक जीवद्रव्य का सामर्थ्य है। प्रत्येक समय में तीनों काल तीनों लोक केवलज्ञान में सहज ही ज्ञात होते हैं....सर्वज्ञ भगवान का स्वीकार करनेवाला, वर्तमान अपूर्ण ज्ञान में से सम्पूर्ण का निर्णय नि:संदेह तत्त्व में से लाता है। - समयसार प्रवचन से

जीव को संसार-परिभ्रमण और दु:ख

किस कारण होता है ?

(जैनदर्शन शिक्षणवर्ग की परीक्षा में पहले प्रश्न के उत्तररूप निबंधों से)

जीव अनादिकाल से तिर्यंच, नरक, मनुष्य और देव - ऐसी चार गतिरूप संसार में परिभ्रमण कर रहा है और अनंत दु:ख भोग रहा है। उस संसारपरिभ्रमण का दु:ख टालने के लिए प्रथम उस दु:ख के कारण क्या हैं, उन्हें जानना चाहिए। दु:ख के कारणों को बराबर जान ले तो उन्हें टालकर सुख का उपाय कर सकता है।

कोई परवस्तु आत्मा को संसार परिभ्रमण नहीं कराती और न परवस्तु को दु:ख देती है, किन्तु आत्मा स्वयं अपने आत्मस्वरूप को भूलकर मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का सेवन करता है, इसी से वह संसार में भटकता है और अनंत दु:खों का अनुभव करता है।

जीव को अपने स्वरूप का अज्ञान अर्थात् अगृहीत मिथ्यात्व तो अनादिकाल से है और तदुपरान्त कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र के सेवन से गृहीत मिथ्यात्व का सेवन करता है, इसलिए मिथ्यात्व को अधिक दृढ़ करता है। मिथ्यात्व के कारण सात तत्त्वों को भी वह विपरीत मानता हे, वह संसारपरिभ्रमण के दु:ख का कारण है। जीव सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहिचाने और उनके सत्य उपदेश द्वारा सात तत्त्वों का तथा अपने आत्मा का स्वरूप समझ कर अनादिकालीन मिथ्यात्व को टाले और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करे तो उसे मोक्ष के अनंत सुख का अनुभव हो और उसका संसारपरिभ्रमण का दु:ख दूर हो जाये।

☆ ☆ ☆

अपने आत्मस्वरूप के अज्ञान से और सात तत्त्वों के विपरीत श्रद्धान से जीव को अनादिकाल से संसारपरिभ्रमण और दु:ख हो रहा है। दु:ख कोई बाहर की वस्तु नहीं है, किन्तु जीव के मिथ्याभाव से होनेवाले राग-द्वेष-मोह ही दु:ख हैं। वह दु:ख किसी बाह्य साधन से दूर नहीं होता किन्तु अपनी सच्ची समझ से ही दूर होता है।

जीव का अपना स्वरूप तो देह से भिन्न अरूपी चैतन्यमय है, किन्तु अज्ञानी उसे भूलकर देह को ही अपना स्वरूप मानता है, अर्थात् जो देह है, वही मैं हूँ – ऐसा वह मानता है। इसलिए देह का संयोग होने से वह अपने आत्मा का जन्म मानता है और उसका वियोग होने से वह आत्मा का ही नाश मानता है, यानी जन्म से मरणपर्यंत तक ही आत्मा है – ऐसा वह मानता है। और देह के कार्य मैं करता हूँ, देह की अनुकूलता-प्रतिकूलता से मैं सुखी-दुखी हूँ – ऐसा भी वह अज्ञानी मानता है। मोक्ष के कारणरूप जो संवर-निर्जरा है, उसमें वह प्रीति नहीं करता और उसे कठिन मानकर इन्द्रिय-विषयों में प्रीति करता है। ऐसी विपरीत श्रद्धा, सो मिथ्यात्व है और उस मिथ्यात्व के प्रभाव से जीव अनादिकाल से संसार में भटक रहा है। क्वचित् दुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त होता है, तब भी कुदेव-कुगुरु और कुधर्म के सेवन से मिथ्यात्व की पुष्टि करता है, इसलिए उसका संसारपरिभ्रमण दूर नहीं होता, और अपने दुर्लभ मनुष्यजीवन को नष्ट करके अपने ही हाथों से अपना अकल्याण करके अनंत दुःख भोगता है। इसलिए दुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त करके सच्चे देव-गुरु-धर्म को पहिचान कर सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का सेवन करने से मोक्ष सुख प्रगट होता है तथा संसारपरिभ्रमण का दुःख दूर होता है।

कुदेव, कुगुरु और कुधर्म का सेवन करने से जीव संसारसमुद्र में डूबता है। जिन्हें जीव और शरीर के बीच भेदविज्ञान न हो, जो विकार से धर्म मनायें, विषय-कषायों का पोषण करें, वे सब कुदेव-कुगुरु और कुधर्म हैं। जो शस्त्र, वस्त्र या स्त्री आदि रखते हैं, वे सच्चे देव नहीं हैं, किन्तु कुदेव हैं। जिन्हें अंतर में मिथ्यात्व आदि का और बाह्य में वस्त्र-पैसा-स्त्री आदि का परिग्रह हो, तथापि अपने को मुनि आदि मनाएं, वे दंभी गुरु अर्थात् कुगुरु हैं। कुगुरु पत्थर की नौका के समान हैं। जिसप्रकार पत्थर की नौका स्वयं डूबती है और उसमें बैठने वाले भी डूब जाते हैं, उसीप्रकार कुगुरु स्वयं तो संसार में डूबते ही हैं और उनका सेवन करनेवाले भी संसार में डूब जाते हैं। इसलिए सर्वज्ञ भगवान ने अपनी दिव्यध्वनि द्वारा कहा है कि – हे जीवो ! यदि तुम इस संसार-समुद्र से पार होना चाहते हो तो कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का सेवन छोड़कर सच्चे देव-गुरु-धर्म का स्वीकार करो और आत्मा को पहिचान कर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करो। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही इस भवसमुद्र से पार होने का उपाय है। ●

दिव्यध्वनि में भगवान द्वारा कही गई प्रभुता

आजकल विदेहक्षेत्र में भी सीमंधर परमात्मा तीर्थंकररूप से विराज रहे हैं और वहाँ धर्म प्रवाह स्रोतरूप से बह रहा है। यहाँ से भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव सीमंधर भगवान के पास गये थे और वहाँ आठ दिन रहकर भगवान की साक्षात् दिव्यध्वनि का श्रवण किया था। लगभग संवत् 49 में यह प्रसंग बना था। दिव्यध्वनि झेलकर भरतक्षेत्र लौटने पर उन्होंने श्री समयसार आदि शास्त्रों की रचना की थी। उसमें वे कहते हैं – 'भगवान दिव्यध्वनि में कहते थे कि हे जीवो! हम सिद्ध हैं, तुम सिद्ध हो, हम परमात्मा हैं, तुम भी परमात्मा हो। प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाव से परिपूर्ण परमेश्वर है। तुम अपनी प्रभुता को पहिचानो। जितने जीव प्रभु हुए हैं, वे सब अपने प्रभुत्व को पहिचान कर उसी के आधार से हुए हैं। प्रभुता कहीं बाहर से नहीं आती, किन्तु स्वभाव में शक्ति है, उसी में से प्रगट होती है। इसलिए प्रथम स्वभावशक्ति को पहिचानो!

कल्याण

जितना काल पर के लिए व्यतीत करता है, उतना काल यदि स्व के लिए लगाये तो कल्याण हुए बिना न रहे। भाई रे ! अनंतकाल में महादुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त हुआ, उसमें यदि कल्याण न किया तो कब करेगा ?

– समयसार प्रवचन से

धर्म का फल

शरीर के रोगों को मिटाना धर्म का कार्य नहीं है। पूर्व के पुण्य हों तो शरीर निरोगी होता है। धर्म के फल से शरीर का रोग मिटता है – ऐसा माननेवाला धर्म के स्वरूप को समझा ही नहीं है। पुण्य शुभपरिणामों से होता है और धर्म आत्मा का शुद्धस्वभाव प्रगट करने से होता है, उसकी उसे खबर नहीं है। सनत्कुमार चक्रवर्ती को दीक्षा लेने के पश्चात् (उन महान धर्मात्मा मुनि को) कई वर्षों तक महान रोग लगा रहा, तथापि शरीर पर धर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। धर्म से शरीर निरोगी रहता है – ऐसा नहीं है, किन्तु धर्म के फल में तो आत्मा में अपूर्व आनन्द का अनुभव प्रगट होता है और पुण्य तथा शरीरादि का संबंध ही नहीं होता। मोक्षमार्ग में पुण्य का भी निषेध है, उसके बदले इस समय तो लोग धर्म के नाम से अंधाधुंधी चला रहे हैं और कहते हैं कि पुण्य करो, उससे मनुष्य तथा देवगति प्राप्त होगी और तत्पश्चात् परम्परा से मोक्ष होगा। आत्मा को समझने की तो कहीं बात ही नहीं आई। आत्मा को भूलकर ऐसी बातें (जीव राग-द्वेष का कर्ता, उसके फल का भोक्ता ऐसी काम, भोग, बंधन की कथा) तो जीव ने अनंत बार सुनी है, इसलिए श्री आचार्य भगवान कहते हैं कि हम तुझे आत्मा के एकत्व-विभक्त स्वभाव की बात सुनाते हैं, जड़ के संयोग की रुचि छोड़, पुण्य से धर्म नहीं है....पुण्य मेरा, शुभभाव करते-करते धीरे-धीरे धर्म होगा – ऐसी विषैली मान्यता का अर्थात् राग-द्वेष-अज्ञान भाव का, वीतराग के वचन विरेचन करा देते हैं...आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से विरुद्धभाव को कोई धर्म कहे तो वह विकथा है। – समयसार प्रवचन से

भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला के

हिन्दी प्रकाशन

परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का अपूर्व लाभ लेने के लिये जिज्ञासु निम्नलिखित पुस्तकों की स्वाध्याय अवश्य करें!

समयसार -प्रवचन (भाग-1)	6-0-0
समयसार -प्रवचन (भाग-2)	5-0-0
मोक्षमार्गप्रकाशक की किरणें	1-6-0
दशलक्षण-धर्म	0-12-0
सम्यग्दर्शन	2-8-0
भेदविज्ञानसार	2-0-0
मूल में भूल	0-12-0
मुक्ति का मार्ग	0-10-0
आत्मधर्म की फाइलें	3-12-0

उपरोक्त पुस्तकों में 'सम्यग्दर्शन' नाम की पुस्तक अभी प्रगट हुई है, जो प्रत्येक जिज्ञासु को अवश्य पढ़ने योग्य है।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

प्राप्तिस्थान —

श्री जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : चुनीलाल माणेकचंद रवाणी, शिष्ट साहित्य मुद्रणालय, मोटा आंकडिया (अमरेली)
प्रकाशक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, अनेकान्त मुद्रणालय, मोटा आंकडिया (अमरेली)